

ध्यान पत्रिका

प्रेरक : डॉ० शुभ्रू नाथ
M.Sc., Ph.D.

फरवरी-2011

वर्ष-21

अंक-2



प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09813294171

अपने भक्तों के सुखों की रक्षा करते हैं हनुमान जी

✍ पं० विजय शंकर मेहता

तुलसी दास जी कृत हनुमान चालीसा की 22वीं चौपाई :-

सब सुख लहै तुम्हारी सरना ।

तुम रक्षक काहे का डरना ॥

संसार में सुख सभी चाहते हैं, पर सुख-दुःख को एक साथ ही समझना होगा। शरण में आए भक्त को सारे सुख प्राप्त हो जाते हैं और सारे भय (दैहिक, दैविक) दूर हो जाते हैं। इस चौपाई से हमें सुख और दुख को समझने की नई व्याख्या मिलती है। कुछ लोगों को यह गलतफहमी होती है कि सुख और दुख एक नहीं हैं। दुख 'मैं' का दूसरा नाम है और 'मैं' आत्मा से अलग है। साधक का 'मैं' यदि हावी है, तो वह परमात्मा तक नहीं पहुंचने देगा। संत दादू की पंक्तियां हैं :-

मेरे आगे 'मैं' खड़ा, थाते रहा लुकाई ।

दादू परगट पीव है, जे यह 'आपा' जाई ॥

परमात्मा तो हमारे सामने खड़े हैं। हम ही अपने 'मैं' की आड़ बनाकर खड़े हो गए हैं। इसलिए वे दिखते नहीं हैं। यह 'मैं' का आपा (Ego) हमको हटाना होगा।

सुख का सही स्वरूप क्या है? यह अनुभव श्री हनुमान चालीसा कराती है। हनुमान जी अपने भक्तों के सुखों की रक्षा करते हैं। हर आदमी की कामना है: उसे सुख मिले और मिला हुआ सुख सुरक्षित भी रहे। श्री हनुमान जी के भक्तों को यह बहुत बड़ा आश्वासन है। दूसरों को बेफिक्र रखना हनुमानजी की कला है। आजकल ऐसे प्रबंधकों को पसन्द किया जाता है: जो रचनात्मक के ज्वालामुखी पर बैठकर पूरे माहौल को बेफिक्र रखते हैं। यही हनुमंत का स्ट्रेस मैनेजमेंट (Stress Management) है। और जो लोग इसका पालन करना चाहते हैं: उनके लिए हनुमानजी प्रेरणा स्रोत हैं। □

जब शरीर की इतनी देखभाल: तो जीवात्मा की क्यों नहीं ?

✍ डॉ० जगदीश गाँधी, लखनऊ

हमारे दो पिता हैं। एक मेरे मिट्टी के शरीर का पिता तथा दूसरा मेरी आत्मा का पिता: परम्+आत्मा = परमात्मा। मृत्यु होने पर लोग कहते हैं कि अब तो सब कुछ चला गया। अर्थात् इस मिट्टी के शरीर का कोई मोल नहीं। इसमें से जो असली चीज 'जीवात्मा' थी, वह चली गयी। नाराज न हों: जब तक यह बात मन-मंदिर में नहीं आती, तब तक बात नहीं बनती।

मनुष्य की दो वास्तविकतायें हैं: शरीर तथा जीवात्मा। शरीर पाँच तत्त्वों: पृथ्वी, पानी, अग्नि, आकाश तथा वायु से मिलकर बना है। जीवात्मा परमात्मा का अंश है। मृत्यु के पश्चात् शरीर मिट्टी में मिल जाता है। हमारे जीवन की सबसे बड़ी प्रसन्नता: जीवात्मा को परमात्मा से जोड़ना तथा आवागमन से छुटकारा है। आत्मा को भूला देना सबसे बड़ा दुःख है। आत्मा को भुलाने से जीवन उद्देश्यहीन हो जाता है।

मनुष्य के रोग तीन तरह के हैं:

शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक।

समाज में शारीरिक रोगों को दूर करने के लिए चिकित्सकों की बहुत सारी दुकानें: अस्पतालों, क्लीनिकों के रूप में दिखाई देती हैं। मानसिक रोगों को दूर करने के लिए मनोचिकित्सकों की दुकानें दिखाई देती हैं। किन्तु आध्यात्मिक रोगों को दूर करने के लिए कोई दुकान नहीं है। आध्यात्मिकता के नाम पर चारों तरफ विभिन्न जाति-धर्म की दुकानें दिखाई देती हैं। इनके पास आध्यात्मिक रोग का इलाज कराने जाने वालों को कोई लाभ नहीं मिलता। उलटा वे आपस में मन मिटाव होने के

कारण: अपने हृदय में वास करने वाले परमात्मा से और दूर हो जाते हैं। आध्यात्मिक रोग सबसे अधिक दुःखदायी होता है। आध्यात्मिक चिकित्सकों में युग-युग से राम, कृष्ण, बुद्ध, ईशु, मोहम्मद, नानक, बहाउल्लाह अवतारों के रूप में हैं। ये अवतार इन रोगों का इलाज अपने पवित्र ग्रन्थों: रामायण, गीता, त्रिपटक, बाईबिल, कुरान, गुरु ग्रन्थ साहिब में ज्ञान के रूप में उड़ेल जाते हैं। जिस ग्रन्थ पर हमारी आस्था हो: उसकी एक-एक चौपाई, श्लोक, वचन, अयात को ले लें। उस की गहराई में जाकर मनन-निद्रियासन तथा आचरण करें। हमें आध्यात्मिक लाभ अवश्य होगा। प्यास लगने पर घड़े का पानी पी जाने से लाभ होता है। यदि हम घड़े की पूजा करें या 'जय पानी देवता की' करें और पानी को नहीं पीयें, तो कुछ दिनों में प्यास से मर जायेंगे। इसी प्रकार यदि हम अवतारों: राम, कृष्ण, बुद्ध, ईशु, नानक के शरीरों की पूजा करें तथा पवित्र ग्रन्थों: रामायण, गीता, त्रिपटक, बाईबिल, कुरान, गुरु ग्रन्थ साहिब की मात्र अगरबत्ती जलाकर आरती उतारें, तो इससे कोई लाभ नहीं होने वाला। प्रिय मित्रो ! लाभ तो तब होगा जब हम पवित्र ग्रन्थ की एक चौपाई, श्लोक, वचन, अयात की गहराई में जाकर उसके ज्ञान को पी जायेंगे। वे किसी एक धर्म-जाति को ही नहीं, वरन् समस्त मानव जाति को दुःखों से मुक्ति दिलाते हैं।

शुद्ध हृदय से अपनी जीवात्मा को परमात्मा से जोड़ने के प्रतिपल किये जाने वाले हमारे प्रयासों के फलस्वरूप: **जीवन में प्रतिपल आने वाले दुःखों को सहन करने की शक्ति तथा उचित निर्णय लेने की सूझबूझ परमात्मा से निरन्तर प्राप्त होती रहती है।** हमें दुःखों तथा विपरीत परिस्थितियों में भी सुख की अनुभूति होती है। संसार का कोई दूसरा व्यक्ति नहीं: वरन् हम ही अपने सबसे बड़े दोस्त भी हैं तथा सबसे बड़े शत्रु भी हैं। हमने जो अपनी सबसे कीमती चीज खो दी है: वही तो

हमारी जीवात्मा (रूह) है। मानव जीवन में आत्मा का खोना ही: खोना है और जीवन में यदि कोई सबसे अमूल्य चीज है पाने की: तो वह है आत्मा। आत्मा के पाते ही जीवन में एक मिठास आ जाती है: जीवन में ऐसा मधुर स्वाद आ जाता है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ठीक इसके विपरीत यदि हमने आत्मा को भूलवश या अज्ञानवश भुला दिया है: तो जीवन में सब फीका हो जाता है। फिर चाहे हमें संसार की सारी भौतिक चीजों का खजाना भी मिल जाये, किन्तु वह हमें किसी प्रकार का चैन नहीं दे पाता। जीवन बेस्वाद हो जाता है। मनुष्य बेचैन होकर संसार में पूरे जीवन भर सब जगह भटकता और हाथ-पैर मारता फिरता है। वह अपने हृदय-अन्तःकरण में वास करने वाले परमात्मा के पास नहीं जाता। क्षणिक भौतिक स्वार्थ के लिए अपनी आत्मा को पाप कर्म द्वारा फिर दांव पर लगा देता है।

प्रिय मित्र! हमारे जीवन का अब एक ही उद्देश्य होना चाहिए: मानव जाति के कल्याण के लिए महान अवतारों द्वारा जीवन भर उठाये गये कष्टों को याद करें। उनकी शिक्षाओं का पालन करते हुए इस सुन्दर सृष्टि की हरियाली, हवा, पानी, मिट्टी तथा जीवन की उन्नति पर हर पल कर्म करें। □

सत्संग

✍ श्री कुबेर प्रसाद ‘गुप्त कबीर’

सत्संग दो शब्दों का योग है: सत् और संग।

सत् क्या है? ‘**जो तिहुँकाल एक रस रहई**। जो तीनों कालों में एक समान रहता है। जिसमें कभी कोई परिवर्तन नहीं होता। ईश्वर, भगवान, ब्रह्म, राम, परमात्मा, आत्मा: ये सब शब्द एक ही सत् तत्व के वाचक हैं। यह तत्व सदा निर्गुण, निराकार, निर्लिप्त और अकर्ता स्वरूप में ही रहता है।

संग की महिमा बहुत बड़ी है :-

बिनसड़ उपजड़ ग्यान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग।

संग करने अर्थात् सम्पर्क में आने पर जो अधिक शक्ति सम्पन्न होती है, उसके गुण या अवगुण संग करने वाले में: मात्र संग करने से आने लगते हैं। इस प्रभाव के लिए अलग से कुछ करने की आवश्यकता नहीं होती।

ब्रह्मनिष्ठ सन्तों ने, महात्माओं ने सत्संग का सरल शब्दों में अर्थ किया है-**मन का श्रमरहित होकर अविनाशी तत्व के क्षेत्र में गतिशील रहना।** अन्य सन्तों ने ‘मूक सत्संग’, ध्यान (Meditation), भावातीत ध्यान, चुप साधन, जागृति-सुषुप्ति इत्यादि शब्दों को सत्संग के अर्थ में ही प्रयुक्त किया है। **सत्संग का क्या महत्व है?**

सत् संगत मुद मंगल मूला।

सोइ फल सिधि, सब साधन फूला ॥

जिस प्रकार वृक्ष का मूल (जड़): वृक्ष का तना, डालियां, शाखाएं, पत्तियां, फूल और फल सभी प्रदान करता है, उसी प्रकार सत्संग: सभी प्रकार के कल्याण और आनन्द देने वाला है। सत्संग ही इस उपलब्धि की साधना (फूल है) और साधना की सिद्धि (फल) भी सत्संग ही है, जो सत्संग प्रारम्भ करते ही मिलने लगता है:-

सठ सुधरहिं सत्संगति पाई।

पारस परस कुधातु सुहाई ॥

शठ: जिन पर किसी भी अच्छाई का प्रभाव नहीं पड़ता, जो बदलने के नाम पर अत्यन्त कठिन और जड़ हैं: वे भी सत् का संग करने पर सुधर जाते हैं, बदल जाते हैं। यही नहीं जिस प्रकार पारस पत्थर का संग (सम्पर्क) पाकर लोहा जैसी धातु भी सोना हो जाती है: उसी प्रकार सत्संग करने पर बुरे मनुष्य भी स्पृहणीय, ग्राह्य और मूल्यवान् हो जाते हैं। □

रावण : अहम् का प्रतीक

📖 डॉ० शम्भू नाथ

राम शब्द आन्तरिक चेतना (होनी) का प्रतीक और रावण बाह्य चेतना (करनी) का प्रतीक है। ये दोनों चेतनाएं किसी न किसी अंश में हर साधारण मनुष्य के अन्दर हैं: और इन्हीं के कारण प्रत्येक मनुष्य कभी सुखी और कभी दुखी रहता है। जो व्यक्ति जीवन की उन साधनाओं को पा जाता है, जिन पर चलने से: समय बीतने के साथ-साथ, धीरे-धीरे आन्तरिक चेतना (internal Consciousness) का 'मैं' बढ़ता है, फलस्वरूप बाह्य चेतना में आन्तरिक चेतना भी शामिल हो जाती है। उसका बाह्य जगत का 'मैं' (Ego) समाप्त होने लगता है: और उसके जीवन में दुःख कम होकर सुख बढ़ता जाता है।

जीवन में साधना के रास्ते पर चलने से ऐसा किस प्रकार होता है: यह राम-रावण की लड़ाई की कथा के रूप में भी समझा जा सकता है :-

रावण बहुत बड़ा तपस्वी और विद्वान था। जहां तक लेखक के ज्ञान का प्रश्न है: रावण केवल कर्मकाण्डी ही था। बुद्धि और शरीर की शक्ति के सहारे मनुष्य जीवन के हर पहलू में बाह्य चेतना का विकास करते-करते बहुत ऊँचे स्तर तक चला जाता है। लेकिन इससे जीवन के दुःख भी उसी अनुपात में बढ़ते जाते हैं, कम नहीं होते। बाह्य चेतना के द्वारा की गई साधना (तपस्या): रावण रूपी रूलाने वाली शक्ति है। हम आज के समाज में कितनी आसानी से देख सकते हैं कि अमेरिका, इंग्लैण्ड, रूस, फ्रांस आदि देश जहां विज्ञान बहुत उन्नत अवस्था में है: वहां दुःख भी उसी अनुपात में बढ़ा हुआ है। हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि ब्राउन शुगर (Brown Sugar) जैसे नशीले पदार्थों के सेवन की लत पश्चिमी

देशों के कारण ही यहां भी फैल रही है। यदि हम आत्म हत्या करने वाले आंकड़ों और अनिद्रा (Insomia) से पीड़ित व्यक्तियों के आंकड़ों को देखें तो पता चलेगा कि भारत तो उन देशों के मुकाबले में बहुत पीछे है, जहां विज्ञान ने बहुत उन्नति की है। यह इसलिए है: क्योंकि उनके ज्ञान का आधार केवल बाह्य जगत की चेतना का विकास है। विज्ञान आदि के विकास जैसे अन्य कार्यों द्वारा जीवन में दुःखों से छुटकारा नहीं मिलेगा।

रावण का नाम दसानन था। दूसरे शब्दों में दस शीश वाला। शीश हमेशा से बुद्धि का प्रतीक रहा है। मनुष्य को बाहर की दसों इन्द्रियों के जगत के सुख का ज्ञान चाहिए। इसलिए रावण को दस सिर वाला कहा गया है। दूसरे शब्दों में बुद्धि के स्तर पर समस्त इन्द्रियों का ज्ञान जिसके पास हो, उसकी राजधानी लंका: स्वर्ण की क्यों नहीं होगी? विभिन्न प्रकार के सुख के देवता उसके आधीन क्यों नहीं होंगे?

मन में एक शंका यह उठती है कि क्या हमें बुद्धि के विकास के लिए समय नहीं देना चाहिए?

इसका उत्तर यह है कि हमें बुद्धि के विकास के लिए समय तो देना चाहिए: लेकिन इसके साथ-साथ आन्तरिक चेतना (Internal consciousness) के विकास के लिए भी समय देना है।

दिव्य शक्तियां क्या हैं और इनके प्राप्त करने का अर्थ क्या है?

दिव्य शक्तियों तक पहुंचने की क्षमता केवल मन में है। इस क्षेत्र तक हम कर्मकाण्ड और उपासना काण्ड दोनों प्रकार की साधनाओं द्वारा जा सकते हैं। जिस समय कृष्ण ने अर्जुन को दिव्य शस्त्र की खोज में इन्द्र के दरबार में जाने को कहा: उस समय तक अर्जुन केवल कर्मकाण्ड के क्षेत्र का साधक था। उपासना काण्ड की साधना तो उसके जीवन में तब शुरू

हुई, जब कर्मकाण्ड का अति उच्च साधक होने के बावजूद उसके जीवन में एक ऐसा समय आया, जब वह संशय से भरा हुआ था :-

जीवन क्या है और उसका लक्ष्य क्या है? क्या सही है और क्या गलत है? वह अपने कुल पूर्वज और आचार्यों के विरूद्ध शास्त्र का प्रयोग करे या न करे? उसके बाद ही अर्जुन का जीवन उपासना की साधनाओं की ओर बढ़ा। अब हम यह देखेंगे कि इन दो अलग-अलग साधनाओं द्वारा मन कैसे ज्ञानेन्द्रियों के परे जगत में जाता है?

प्रत्येक मनुष्य के पास शरीर, बुद्धि और मन हैं। शरीर और बुद्धि केवल बाहर के जगत में ही काम करते हैं। मन बाहर और भीतर दोनों क्षेत्रों में विचरण कर सकता है। जब तक जीवन है, मनः बुद्धि और शरीर से जुड़ा हुआ है। ज्ञानेन्द्रियों से परे जगत में मनः स्वयं बिना किसी की मदद के जा सकता है। बाह्य जगत में मनः बुद्धि तथा शरीर दोनों की मदद से जा सकता है।

शरीर में बहुत से चक्र होते हैं। इन चक्रों का ज्ञानः बुद्धि के स्तर पर सम्भव है। इन चक्रों पर मन को एकाग्र करके जीवन में ईश्वरीय शक्ति जागृत कर सकते हैं। यही कुण्डलिनी जागरण का रास्ता भी कहलाता है।

कुण्डलिनी जागृत करके जीवन में ईश्वरीय शक्ति कैसे उभारी जा सकती है ?

इन सभी रास्तों को ठीक से समझने के लिएः हमें बुद्धि का प्रयोग करना पड़ता है और हम कुछ कर्मों का भी सहारा लेते हैं। इसलिए इसे कर्मकाण्ड का ही रास्ता कहा जाता है। यह समझना कितना आसान हैः कि कर्मकाण्ड के रास्ते की शक्तियां उपासना काण्ड की साधना की शक्तियों से कम नहीं हैं। **इसीलिए रावण (अहम् अथवा Ego का**

प्रतीक)ः अपने आप को राम से कम नहीं समझता था।

उपासना का रास्ता

दूसरा रास्ता यह है कि मन बिना किसी कर्म का सहारा लिए केवल बन्धन मुक्त हो जाये। कर्म का सहारा नहीं लेना है, इसलिए कर्म को समझने की आवश्यकता भी नहीं रह गई। इस रास्ते पर किसी प्रकार के कर्म का ज्ञान आवश्यक ही नहीं है। इसलिए इसे उपासना (उप+आसन) अर्थात् यह ईश्वर के समीप का रास्ता कहा जाता है। मन के बन्धन मुक्त होते हीः हमारे मन में धीरे-धीरे आनन्द उभरने लगता है। ज्यों-ज्यों आनन्द उभरता है, मन आनन्द के समीप है।

एक पुरानी कहावत है : ‘होइहिं सोइ जो राम रचि राखा।’

इस पर प्रश्न उठता है कि फिर मनुष्य क्या करे ?

उत्तर यह है कि वह राम से मित्रता करे। राम जो मेरे भाग्य को बना सकता हैः वह तो मेरे अन्दर का आनन्द है। यह वही राम है, जिसके लिए दास मलूका ने कहा हैः-

‘अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।

दास मलूका कह गएः सबके दाता राम ॥’

यह आनन्द ज्यों-ज्यों उभरता हैः मन अन्तर्मुखी होने लगता है। उसके बाद और अधिक आनन्द उभरने परः अन्दर के आनन्द और बाहर के सुख में झगड़ा होने लगता है। जब ऐसा होता है, तब इसके पहले बुद्धि ने जो साधना की थी- चाहे बच्चों ने स्कूल में जाकर इन्जीनियरिंग वा डाक्टरी पढ़ा हो और चाहे अर्जुन ने धनुष की विद्या सीखी होः बुद्धि के स्तर की सारी साधनाओं की शक्ति खो थोड़े जाती है? होता तो केवल यह हैः कि मनुष्य धीरे-धीरे बुद्धि जगत में आन्तरिक चेतना के साथ विचरण करता है और ज्यों-ज्यों ऐसा होता हैः समय बीतने के साथ धीरे-धीरे उसे अन्दर

की शक्ति का ज्ञान होने लगता है। उसे इस सत्य का पता चलने लगता है कि बाह्य जगत की सारी शक्तियों का स्रोत भी अन्दर ही है। जिस अनुपात में यह ज्ञान उभर जाता है: उसी अनुपात में उसका बाहर का अहं (Ego) मिट जाता है और उसी अनुपात में उसके जीवन में सुख उभरने लगता है।

अब यह प्रश्न उठता है कि उपासना की साधना और कर्मकाण्ड की साधना से जब हम ईश्वरीय शक्ति पाते हैं: तो दोनों में अन्तर क्या है ?

उत्तर यह है कि उपासना की साधना के रास्ते पर आनन्द है। आनन्द वह सुख है: जिसमें मन के सुख की भूख मिटाने की शक्ति है। ज्यों-ज्यों यह अन्दर का आनन्द बढ़ता है: मन अपने आप ज्ञानेन्द्रियों (बाहर) के जगत के सुख को नहीं ढूँढ़ता। कारण यह है कि यह इतना बड़ा सुख है कि 'ज्ञानेन्द्रियों के जगत का सुख' उसके आगे बहुत फीका पड़ जाता है। इसी तरह आनन्द उभरने के साथ: ज्ञानेन्द्रियों के सुख की ओर से विमुखता हमारा स्वभाव बनने लगता है। हम अन्दर से बदल जाते हैं।

कर्मकाण्ड के रास्ते पर हम कर्म के ज्ञान के सहारे सुख प्राप्त करने की कोशिश करते हैं और गलत दिशा की ओर जाने से मन को रोकने की कोशिश करते हैं। साधकों से लेखक का निवेदन है कि साधक जो कुछ भी करें, समझ कर करें। उपर्युक्त कर्म काण्ड की सत्यता पर चलने से मन नहीं बदलता और जब तक मन नहीं बदलता: तब तक आप अन्दर से नहीं बदलते, केवल बाहर से बदलते हैं।

प्रश्न उठता है कि बुद्धि के सहारे हम अन्दर से क्यों नहीं बदलते ? क्या हम बातचीत करके और समझकर अन्दर से नहीं बदल सकते ? इसका उत्तर यह है कि अन्दर से बदलने का अर्थ तो केवल यही है: कि हमारा स्वभाव बदल गया। इसलिए हमें

समझना यह चाहिए कि स्वभाव बदलने का अर्थ क्या है ? और हर मनुष्य का स्वभाव अलग-अलग क्यों है ?

मन में दो तरह की शक्तियाँ हैं:-

ईश्वरीय शक्ति और संस्कारों की शक्ति।

हर मनुष्य के स्वभाव का कारण है: अन्दर की इन शक्तियों की स्थिति। अर्थात् जिसके अन्दर जैसे संस्कार हैं: वैसा ही उसका स्वभाव है। इसलिए स्वभाव के बदलने की सम्भावना तो केवल तब होगी: जब हम उन संस्कारों से मुक्त होने की ओर बढ़ें। बुद्धि के सहारे चलने वाले तो हमेशा यह कहते हैं कि हमें स्वभाव को बदल करके ऐसा करना है। लेकिन यह नहीं बताते कि स्वभाव कैसे बदले ?

प्रश्न उठता है कि तब ध्यान से स्वभाव कैसे बदलेगा ?

इसका उत्तर यह है कि ध्यान (उपासना) के रास्ते पर चलने से ब्रह्म (ईश्वर) की शक्ति उभरती है: जो कि अपने आप में सर्वशक्तिमान है। वह बुद्धि के अधीन नहीं है। बुद्धि द्वारा न स्वभाव बदला जा सकता है और न स्वभाव को ठीक किए बिना जीवन में सुख (आनन्द) मिल सकता है। ध्यान के रास्ते पर धीरे-धीरे संस्कार क्षीण (नष्ट) होने लगते हैं। मात्र संस्कारों के क्षीण होने पर ही: जीवन के विभिन्न पहलुओं में दुःख धीरे-धीरे कम होने लगते हैं। दूसरे शब्दों में आनन्द बढ़ने लगता है।

ऊपर हम लोगों ने देखा कि उपासना (ध्यान) के रास्ते पर चलने से आनन्द उभरता है: जो सुख की भूख मिटाता है। अगर हम अपने जीवन को देखें, अपने समाज को देखें और अकेले में बैठकर सोचें:

कि क्या समाज के सारे दुःखों का कारण यह नहीं है, कि हम सब एक दूसरे का सुख छीनकर अपने जीवन को सुखी बनाने में लगे हैं ? हम ऐसा केवल इसलिए करते हैं: क्योंकि ज्ञानेन्द्रियों के जगत का सुख तो खारा सुख है, दूसरे शब्दों में वह सुख की तड़पन बढ़ाने वाला है। □

भक्ति पूर्वक किया गया कर्म: श्रेष्ठ

(सन्यासी गीता)

अर्जुन तब विनती करै, भलीप्रकार समझाओ।
कर्म करूँ या त्याग दूँ, इसका भेद बताओ॥
कल्याणकारी दोनों हैं, दोनों उत्तम जान।
त्याग से कर्म श्रेष्ठ है, इससे मुक्ति मान॥
कर्म करें: बिन कामना, फल आशा न होय।
कर्म भाव निष्काम हो, तब ही त्यागी होय॥
सन्यास योग को धनंजय! अति कठिन तू जान।
कर्म योग कुछ सहल है, अपने चित्त में मान॥
अन्तःकरण को शुद्ध रख, देह इन्द्रिय बस होय।
सब जीवों की आत्मा: कर्म न इस के होय॥
कर्म योगी की रीत यह, जाने सबको मीत।
कर्म आदि सब करते हुए, फल आशा में नहीं प्रीत॥
इन्द्रिय अपने बसमें लावे, चित्त वृत्ति को ठीक चलावे।
कर्म करे और रहे त्यागी, ऐसा योगी है बड़ भागी॥
फल की आशा त्याग कर, ब्रह्मार्पण हो आस।
पाप न छुवे जिस तरह, जल में कमल निवास॥
नौ दरवाजे देह के: इसमें आत्माराम।
आप अकर्ता ही रहे, करे प्रकृतिबस काम॥
सम दृष्ट जो पुरुष है, जगत लिया तिन जीत।
समता ब्रह्म ही को कहें, ब्रह्म बसे तें चीत॥
समस्त विषय संसार के: दुःख के कारण जान।
उपजत विनसत ही रहें, सुख इसमें न मान॥
काम क्रोध से रहित हो, मन इन्द्रिय को जीत।
सब कष्टों से बचा रहे, ब्रह्म से होवे प्रीत॥
हृदय में प्रकाश हो, अन्तर सुख आराम।
वही योगी बस ब्रह्म में, पावे मुक्ति धाम॥

-प्रस्तुति : अनु जैन (भिवानी)

ध्यान का महत्व और मेरे अनुभव

✍ डॉ० बलदेव राज नाशा

सियाराम मन्दिर में पधारे एक नवयुवक ने कहा कि मैंने डॉ० शंभु नाथ जी के कई प्रवचन सुने हैं। अतः दावे से कह सकता हूँ कि गहरे से गहरे: अन्दर डूबने का सबसे बढ़िया ढंग तो एकान्त में, घुप अन्धेरा करके (Pin drop Silence) स्थान पर बैठने में ही है। ध्यान से होने वाले लाभों का वर्णन करते हुए उस नवयुवक ने बताया कि इस उमर में एक साथ घोर संकट आने पर भी मैं कभी विचलित नहीं हुआ। परिवार में 3-4 प्रियजनों की मृत्यु होना, सर्विस छूटने से पैसे का अभाव, विवाह हो जाने से मेरी धर्मपत्नी पर सारे संकटों के आ जाने के आरोप, ताने, झिड़कियाँ, पिता जी को लकवा मारे जाने से दवाइयों के लिए कर्ज पर कर्ज बढ़ना आदि, न जाने कितने कष्ट आए। फिर भी ध्यान के कारण मेरी शान्ति कभी भंग नहीं हुई। नहीं तो मैं पागल ही हो जाता। धर्मपत्नी सहित मेरे परिवार वाले इस प्रकार मेरे थोड़ी देर शान्त बैठने का विरोध करते हैं। इसमें मेरा भी दोष है। न जाने किस डर और भावना के कारण मैं आज तक घर वालों को ध्यान के लिए बैठने का महत्व नहीं बता सका। बिना जानकारी दिए ऐसा विरोध चलता ही रहेगा। ऐसा मुझे लगता है। □

ध्यान द्वारा अनुभूतियाँ

✍ डॉ० त्रिभुवन भारद्वाज

1. वृक्ष की भांति मनुष्य-जीवन हरा भरा होगा।
2. स्वयं व ईश्वर तत्व के अनुभव का ज्ञान होगा।
3. मूल स्वभाव में परिवर्तन होकर सत्त्व गुण के द्वारा समाज सेवा होने लगेगी।
4. रजोगुण व तमोगुण शनैःशनैः कम होंगे।
5. सत् के प्रभाव से वातावरण की शुद्धि होगी।

6. 'होनी' की शक्ति से इच्छापूर्ति शक्ति का जागरण होगा।
7. स्वास्थ्य, शक्ति, ज्ञान, आनन्द, प्रेम की प्राप्ति होगी।
8. काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, ईर्ष्या-द्वेष व मानसिक तनाव की निवृत्ति होगी।
9. मोक्ष की प्राप्ति होगी।



ध्यान माला

श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-13 : क्रिया स्वभाविक हम करें, करें ध्यान विश्राम।

'कर्मसु कौशल' है यही, यही 'कर्म निष्काम' ॥

इस दोहे में स्वाभाविक क्रिया का महत्व बतलाया गया है। प्राणियों में केवल मनुष्य ध्यान (और उसके बाद थोड़ा विश्राम) की साधना कर संस्कारों को अधिक तीव्र गति से निकाल कर सर्वांश में सुखी जीवन की ओर प्रगति कर सकता है, परन्तु मनुष्य को छोड़ कर: अनन्त योनियों के प्राणी ध्यान की यह साधना स्वेच्छा से नहीं कर सकते। भगवान की कृपा से स्वाभाविक क्रिया करने का वरदान मनुष्य जाति को मिला है। मात्र स्वाभाविक क्रिया करके वे अपने संस्कारों को प्रारब्ध भोग के अनुसार चाहे कम निकाल पाते हों, पर स्वाभाविक क्रिया के कारण नये संस्कारों का संचय नहीं करते। पर अभागा मनुष्य बुद्धि के नियंत्रण में (स्वभाव के विपरीत) क्रिया करके संस्कारों का संचय करता रहता है।

ध्यान की साधना के अभाव में मनुष्य की स्वाभाविक क्रिया दुखद और असह्य हो जायेगी: इसमें सन्देह नहीं। किन्तु ध्यान द्वारा मन को ब्रह्म के सत्, चित्त और आनन्द के गुणों से पूरित हो जाने पर सभी स्वाभाविक क्रियाएं: न केवल इच्छित परिणाम देने वाली हो जायेंगी, बल्कि आनन्द से पूर्ण भी होंगी।

गीता में निष्काम कर्म की महिमा गाई गई है। सभी स्वाभाविक क्रियाएं निष्काम (उत्तेजना रहित) होती हैं। बुद्धि से उचित-अनुचित, हानि-लाभ आदि के विचार से की गई सभी क्रियाएं सकाम होती हैं।

दूसरे शब्दों में निष्काम कर्म: पुण्यकर्म और सकाम कर्म: पापकर्म कहे जा सकते हैं। अगर समग्र भाव में देखें: तो ध्यान के बाद जीवन में स्वाभाविक क्रिया करना ही वास्तव में कर्म की कुशलता है।



नोट :- 1. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर नज़दीक बस स्टैंड, हिसार में पारिवारिक सत्संग शाम को 3 बजे से 5 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

2. ध्यान सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

-सुरेश कुमार गुप्ता

1618, अर्बन एस्टेट-II,

पुष्पा कम्पलैक्स के पीछे, हिसार-125005

PRINTED MATTER